Volume-8, No. 2 Aug.-2021, pp. Hin.01-07

जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धांतः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. दानवीर सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग,
एस0 डी0 कॉलेज, मुजफ्फरनगर उत्तर–प्रदेश भारत।

प्रस्तावना

न्याय की अवधारणा प्राचीन काल से ही राजनीतिक चिंतन का मुख्य विषय रही है। न्याय की अवधारणा सम्बन्धी किसी भी चर्चा में उसके बहुआयायी स्वभाव का ध्यान रखना जरूरी है। 'न्याय क्या है' का जवाब सिर्फ उन मापदण्डों का संकेत करके ही दिया जा सकता है, जिनके सहारे मनुष्य ने न्याय के बारें में सोचा और सोचता रहेगा। यह समय बीतने के साथ ही बदल जाता है। इस प्रकार अतीत में जो न्याय था, वर्तमान में अन्याय हो सकता है। जो तत्व कानून, अधिकार, स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुता के मूल्यों को आपस में जोड़ता है, वह न्याय है। हर व्यवस्थित समाज में इन आदर्शो का अपना महत्व होता है और उन्हें संयोजित करने हेतु न्याय का तत्व अपना काम करता है।

मुख्य शब्द– जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धांत, प्लूटो का न्याय, मूल संरचना, मत्स्य न्याय।

न्याय की अवधारणा राजनीतिक सिद्धान्त की महत्वपूर्ण संकल्पनाओं में आती है जो "राजनीतिक मूल्यों में संगति स्थापित करने अथवा उन्हें मिश्रित करने वाली शक्ति है। यह एक समायोजित अथवा समेकित समग्र में उनका मिलन है। अरस्तु के शब्दों में यह वह वस्तु है जो समग्र रूप में अच्छाई का प्रयोग होने के कारण किसी व्यक्ति के अपने पडोसियों के प्रति अच्छाई की सम्पूर्णता की अनुरूप है।[1] पहले हम न्याय की पाश्चात्य अवधारणा की चर्चा करते है। परम्परागत दृष्टिकोण के अंतर्गत मुख्यतः 'न्यायपूर्ण व्यक्ति के' स्वरूप पर विचार किया जाता था। इसमें उन सदगुणों की तलाश की जाती थी, जो व्यक्ति को न्यायपरायण बना देते हैं। यूनानी दार्शनिक प्लेटो परम्परागत दृष्टिकोण का सबसे उपयुक्त उदाहरण है। प्लेटो ने न्याय की स्थापना के उद्देश्य से नागरिक के कर्त्तव्यों पर बल दिया। उसने नागरिकों के तीन वर्ग बनाए दार्शनिक–शासक, सैनिक वर्ग और उत्पादक वर्ग। उसने यह तर्क दिया कि जब ये तीनों वर्ग अपने–अपने कर्त्तव्यों का पालन करेंगे तब राज्य की व्यवस्था अपने आप न्यायपूर्ण होगी। प्लेटो के अनुसार "न्याय समाज को एकताबद्ध रखने वाला सूत्र है, वह व्यक्तियों का एक सामंजस्यबद्ध संगठन है जिनमें से प्रत्येक को अपनी स्वाभाविक योग्यता एवं प्रशिक्षण के अनुसार अपना जीवन व्यवसाय मिल गया है। यह सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार का धर्म है, क्योंकि इसके द्वारा राज्य तथा उसके सदस्यों दोनों का ही हित सम्पादन होता है।[2] अरस्तू ने न्याय की समस्या पर मुख्यतः इस दृष्टि से विचार किया कि व्यक्तियों के आपसी लेन देन में या राज्य के पदों के वितरण में किन–किन नियमों का पालन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अरस्तु ने एक विश्वव्यापी कानून अथवा प्राक्रतिक कानून के अस्तित्व का भी संकेत दिया जो किसी देश या किसी युगविशेष के कानून से परे है। इस संकल्पना को रोम के अधिवक्ताओं ने 'प्राकृत न्याय' संबन्धी विचारों को राज्य के सकारी कानून के साथ जोड़ा। वस्तुतः न्याय सकारी कानून को लागू किये जाने में निहित होता है। फिर मध्यकाल में कैथोलिक चर्च ने ईश्वर को प्राकृतिक कानून का स्त्रोत स्वीकार किया जो मनुष्य के विवेक की दिव्य शक्ति के द्वारा व्यक्त होता है। आधुनिक युग के आरंभ में सामाजिक अनुबंधवदियों ने प्राकृतिक दशा के साथ प्राकृतिक कानून का सम्बंध जोड़ा है। "मोटे तौर पर प्राकृतिक कानून के साथ यह मान्यता जुडी थी कि साधारण कानून को न्याय की अभिव्यक्ति तभी मान सकते हैं जब वह प्राकृतिक कानून के अनुरूप हो"।[3] डेविड ह्यूम ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि न्याय का अर्थ नियमों का पालन मात्र है, ये नियम सर्वहित का आधार है। उपयोगितावाद के प्रवर्तक बेंथम ने कहा कि 'प्राकृतिक कानून' जैसी शब्दावली यथार्थ मूल्यों को धुंधला कर

देती है। न्याय की सच्ची परख उपयोगिता से होती है जिसका मूल मंत्र 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख है'। जॉन स्टुअर्ट मिल ने न्याय को सामाजिक उपयोगिता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष माना है। आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार विशेषतः समाजवादी चिंतन की दृष्टि से न्याय के विषय में यह सोचा जाता है कि आधुनिक चेतना के अनुसार सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा मिले। जहाँ परम्परागत दृष्टिकोण का मुख्य सरोकार व्यक्ति के चरित्र से था, वहीं आधुनिक दृष्टिकोण का सरोकार सामाजिक न्याय से है। सामाजिक न्याय की संकल्पना स्वतन्त्रता, समानता और बंधुता के आदर्शो में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न है। आधुनिक युग में प्राकृतिक कानून या कोरी उपयोगितावाद पर आधारित न्याय की संकल्पना में विश्वास नहीं किया जाता। प्राकृतिक कानून के नियमों, प्राकृतिक अधिकारों या सार्वजनिक उपयोगिता के स्वरूप के बारे में कोई सर्वसम्मत मान्यता विकसित नहीं हो पाई है। आज न्याय के संबंध में केवल ऐसी संकल्पना को स्वीकार कर सकते हैं जिसका निर्माण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक यथार्थ को सामने रखकर किया गया हो।

भारत में भी प्राचीन काल से ही न्याय की अवधारणा किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। प्राचीन आर्य संस्कृति में चाहे जैसी भी राज–व्यवस्था हो, सभी में न्याय का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मानव जाति के विकास के प्रथम चरण में जबकि आदिम जनजातियाँ यायावर के रूप में स्वच्छंद विचरण करती थी तब सर्वत्र 'मत्स्य न्याय' जैसी न्यायिक विधि ही विद्यमान रही होगी। वैदिक काल में न्यायिक व्यवस्था में राजा का स्थान सर्वोच्च था। 'दुष्ट निग्रह' करना राजा का एक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य था।[4] न्याय प्रशासन का उद्देश्य मात्र प्रजा में लोकप्रिय होना ही नहीं था, वरन् स्थापित कानूनों को प्रभावी रूप में लागू करना भी था। समुचित न्यायकार्य से राजा को यज्ञ के समान फल प्राप्त होता था। गौतम स्मृति राजा से न्यायकार्य हेतु वेदो, उपवेदो, धर्मशास्त्रों और पुराणों आदि की उपस्थापनाओं को मानने के लिए निर्देशित करती है। धार्मिक नियमों द्वारा मान्य वर्णों, कुलों व प्रदेशों की परम्पराऐं एवं प्रथाऐं भी न्यायिक सत्ता रखती है।

महाकाव्य काल में राजा सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। निष्पक्ष न्याय उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। राजभवन में वह प्रजा के अभियोग सुनता था और न्याय प्रदान करता था। दुष्ट राजा सिंहासन से उतारा जा सकता था अथवा पागल कुत्ते की भाँति मार दिया जाता था। बौद्ध एवं जैन साहित्य के अनुसार राजा, राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी था न कि स्वामी। उसका प्रमुख कर्त्तव्य प्रजा का कल्याण एवं पालन तथा अपराधियों को दण्ड देना ही था। न्याय कार्य रीति रिवाजों, प्राचीन परम्पराओं एवं स्वीकार की गई विधियों के आधार पर किया जाता था। धर्मशास्त्रों में धर्म, समाज, राज्य आदि विषयों पर व्यापक विचार विमर्श हुआ है। धर्मशास्त्रों में स्मृतियाँ प्रमुख है इनमें नारद स्मृति, याज्ञवलम्य दोनों ने ही राजा को राष्ट्र में सर्वोच्च स्थान दिया है और कहा है कि राजा को पितृतुल्य व्यवहार प्रजा से करना चाहिए।[5] मौर्यकाल में राजा सम्पूर्ण कार्यपालिका व न्यायपालिका का सर्वोच्च अधिकारी था। कौटिल्य स्वधर्मपालन पर जोर देता था। उसका मत था "कि स्वधर्म पालन से मनुष्य का लोक एवं परलोक दोनों ही सुधरते हैं। प्रजा अपने–अपने स्वधर्म का पालन में तत्पर रहें उसी के लिए न्याय व्यवस्था, न्यायलय एवं दण्ड व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाता है।[6] कौटिल्य के अनुसार राजा को भी धर्मानुसार ही प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। जो राजा न्यायपूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता एवं अनुचित रूप से दण्ड देता है, वह नरकगामी होता है। राजा को न्याय के मामले में पक्षपात नहीं करना चाहिए, शत्रु हो या मित्र, उसे न्याययुक्त ही दण्ड देना चाहिए।

न्याय का यही स्वरूप, विभिन्न धाराओं के माध्यम से प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक पहुँचा है। न्याय की पाश्चात्य अवधारणा हो या पौर्वात्य अवधारणा हो, न्याय का एक ही घ्येय है, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असमानताओं को दूर करना। इसके लिये स्थान, समय और परिस्थितियों को घ्यान में रखते हुए व्यवस्थाएं भिन्न हो सकती हैं। न्याय ने अपनी इसी मूल भावना के साथ, विभिन्न संकल्पनाओं के साथ सामंजस्य कर, प्राचीन काल से आधुनिक काल तक विकास किया है।

रॉल्स का न्याय सिद्धांत

पूंजीवादी और मिश्रित अर्थव्यवस्थायें वस्तुओं और सेवाओं को जुटाने में चाहे कितनी ही कार्यकुशल क्यों न हों उन्होनें आय, सम्पदा और शक्ति की ऐसी विषमताएं पैदा कर दी थी जिन्हें कही भी उचित नहीं माना जा सकता था। समकालीन उदारवादी चिंतन के अंतर्गत 'प्रगति बनाम न्याय' के विवाद में हेयक ने प्रगति का पक्ष रखते हुए न्याय की अवहेलना की है। इसके विपरीत, जान रॉल्स ने अपनी विख्यात कृति 'ए थियरी ऑफ जस्टिस' 1971 के अंतर्गत यह तर्क दिया है कि उत्तम समाज में अनेक सद्गुण अपेक्षित होते हैं, उनमें न्याय सर्वप्रथम है। न्याय उत्तम समाज की आवश्यक शर्त है, परन्तु यह उसके लिए पर्याप्त नहीं है। किसी समाज में न्याय के अतिरिक्त दूसरे नैतिक

गुणों की प्रधानता हो सकती है, परन्तु अन्यायपूर्ण समाज विशेष रूप से निंदनीय होगा।

जॉल राल्स का चिन्तन उपयोगितावादी चिन्तन की आलोचना से प्रारंभ होता है। उनका उद्देश्य, उपयोगिता का विरोध करने के लिए एक कार्यकारी तथा व्यवस्थात्मक नैतिक अवधारणा प्रदान करना था।[7] रॉल्स ने न्याय की समस्या को ध्यान रखते हुए, पाया कि प्राथमिक वस्तुओं और सेवाओं के न्यायपूर्ण व उचित वितरण की समस्या है। ये प्राथमिक वस्तुएं–अधिकार और स्वतंत्रताएँ, शक्तियाँ व अवसर, आय और संपत्ति तथा आत्म सम्मान के साधन हैं। बेंथम के उपयोगितावाद का सिद्धांत 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख' की बात करता है। बेंथम के इस विचार के संबंध में जॉन रॉल्स का कहना है कि यह सिद्धांत प्राथमिक वस्तुओं के न्यापूर्ण वितरण में बाधा डालता है। बेंथम अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख पहचानने के चक्कर में यह बताना भूल जाते हैं कि इससे व्यक्ति विशेष को कितनी हानि हो रही है। अतः बेंथम के इस सिद्धांत की आलोचना हुए कहा कि "सुखी लोगों के सुख को कितना भी क्यों न बढ़ा दिया जाय, उससे दुखी लोगों के दुख का हिसाब बराबर नहीं किया जा सकता।" रॉल्स ने उपयोगितावाद सिद्धांत का खंडन करके उसके स्थान पर न्याय उचितता के रूप में का सिद्धांत प्रस्तुत किया। रॉल्स का मानना है कि बेंथम के सिद्धांत में अल्पसंख्यकों के दावे को बहुमत द्वारा कुचल दिया जाता है। बहुसंख्यक की खुशी के लिए किसी अन्य की स्वतंत्रताओं की जिम्मेदारी ली जाती है तथा न्याय द्वारा रक्षित अधिकार न तो राजनीतिक सौदेबाजी के विषय होते हैं और न ही सामाजिक हितों की गणना का।[8] रॉल्स यह मानते थे कि उपयोगितावाद के विरोध में आने वाला बहुलवादी सिद्धांत, जिसे स्वयं प्रज्ञावाद की संज्ञा देते हैं भी अपना कोई निजी व्यवस्थित विकल्प सुझाने में असमर्थ रहा है।

रॉल्स अपने सिद्धान्त को समझौतावाद या समझौता के रूप में संबोधित करता है। वह इसके ऐतिहासिक तत्व लॉक, रूसो तथा काण्ट में ढूंढ़ता है।[9] इस तरह रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धान्त को समझौतावादी विचारों पर आधारित किया है। इसी कारण रॉल्स के न्याय सिद्धान्त को समझौतावादी न्याय सिद्धान्त भी कहा जाता है। उनका मानना है कि परम्परागत उपयोगितावादी सिद्धान्त का सर्वोत्तम विकल्प सामाजिक समझौतावादी सिद्धान्त ही है। क्योंकि यह समझौता युक्त तथा स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच सहमति पर आधारित होता है इसमें स्त्री–पुरूष एक सामाजिक समझौता करने के लिये एक साथ मिलते हैं। न्याय की सर्वसम्मत प्रक्रिया निर्धारित करने के लिये रॉल्स ने एक विशेष तर्क प्रणाली का उपयोग किया। सामाजिक समझौते की प्रणाली का अनुसरण करते हुए रॉल्स ने एक काल्पनिक युक्ति का प्रयोग किया। इसके लिये रॉल्स ने यह काल्पनिक तर्क दिया कि यदि व्यक्तियों को उनके वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से अलग कर दिया जाए और समाज में प्रचलित भेदभाव के ज्ञान से भी अलग कर दिया जाये तो वे भावी समाज में अपने हितों की अधिकतम वृद्धि के लिये सामाजिक जीवन के नियमों, सिद्धान्तों और संस्थाओं का निर्माण किस प्रकार करेंगे। इस काल्पनिक स्थिति को रॉल्स ने मूल स्थिति की संज्ञा दी है। 'मूल स्थिति' से तात्पर्य रॉल्स के लिये वही है जो हाब्स, लॉक एवं रूसों के लिये प्राकृतिक अवस्था से था। प्राकृतिक अवस्था में व्यक्ति जंगली एवं असभ्य था, परन्तु रॉल्स की मूल स्थिति में व्यक्ति विवेकशील एवं बुद्धिमान प्राणी था। वह समानता के आधार पर जीवन यापन करता था। इस स्थिति में कोई भी व्यक्ति समाज में अपनी प्रतिष्ठा, वर्ग स्थिति को नहीं जानता था और न ही उसको अपनी क्षमता एवं बुद्धिमत्ता का ज्ञान होता था। इस अवस्था में व्यक्ति अपने स्वार्थ एवं हितपूर्ति की अपेक्षा प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं–सम्पत्ति, आय, शक्ति, स्वतंत्रता, आत्म सम्मान में अपनी हिस्सेदारी समझता था। रॉल्स का मानना था कि व्यक्ति के पास निजी हितपूर्ण एवं स्वार्थ सिद्धि जैसे कारक होते है। फिर भी व्यक्ति इन कारकों से दूर रहता है। इन सभी से दूर रखने वाले कारक है। "अनभिज्ञता का आवरण"। (Veil of Ignorance) यह अनभिज्ञता का आवरण प्रत्येक व्यक्ति को उसे विशिष्ट सामाजिक वर्ग के अवसरों तथा स्थितियों से लाभान्वित या अलाभान्वित होने से रोकता है।[10] यह स्थिति ही न्याय के निष्पक्ष सिद्धांतो के निर्माण में सहायक हो सकती है, क्योंकि जानकारी से युक्त सर्वसम्मति के आधार पर, पूर्वाग्रहों से युक्त होने के कारण, कोई भी सौदेबाजी या समझौता नहीं कर सकते। रॉल्स का कहना है कि "न्याय की विशिष्ट अवधारणा की सर्वसम्मत पसन्दगी को अनभिज्ञता का आवरण ही संभव बनाता है। जानकारी की इन सीमाओं के बिना मूल स्थिति में सौदेबाजी की समस्या बहुत जटिल बन जायेगी, यहाँ तक कि अगर सैद्धान्तिक रूप से कोई समाधान करने में सक्षम नहीं है।[11]

अतः यह सपष्ट है कि 'मूल स्थिति' जैसी परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति का एक दूसरे से पूर्ण समानता का सम्बन्ध होगा तथा निष्पक्षता की स्थिति होगी। मूल स्थिति की सहमति अर्थात् समझौते का लक्ष्य है, न्याय

के सिद्धान्तों का चयन करना। समझौते की परिकल्पना को रॉल्स ने काण्ट की ही तरह परिकल्पनात्मक माना है। रॉल्स की मूलस्थिति में व्यक्ति को एक विवेकशील प्राणी माना गया है। समाज के सभी विवेकीय व्यक्ति मिलकर यह तय करते हैं कि उनके लिये क्या सही है, क्या गलत है, क्या न्यायपूर्ण है क्या अन्यायपूर्ण है। इस तरह स्पष्ट है कि एक व्यक्ति की इच्छा सम्पूर्ण समाज की इच्छा होती है क्योंकि उसका इच्छाशक्ति की पूरे समाज के लिये उपादेयता है। मूल स्थिति में व्यक्ति न्याय के सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए समझौता करता है। उसका लक्ष्य अपने हित की पूर्ति करना है जो केवल न्याय के सिद्धान्त से ही संभव हो सकता है। रॉल्स न्याय का विश्लेषण नैतिकता पर आधारित काण्ट के दर्शन के आधार पर करते है। 'ए थियरी ऑफ जस्टिस' में रॉल्स का उद्देश्य न्याय न्याय की वह अवधारणा प्रस्तुत करना है, जिससे लॉक, रूसो तथा काण्ट के सामाजिक समझौतों के सुपरिचित सिद्धान्त तक पहुँचा जा सके।[12] इसी आधार पर रॉल्स अपने सिद्धान्त का उपयोगितावाद से अन्तर कर पाने में सफलता हासिल करते है। रॉल्स काण्ट की मुख्यतः तीन अवधारणाओं पर बल देते है–स्वायत्तता की कल्पना, निरपेक्ष आदेश का विचार तथा लक्ष्यों के साम्राज्य की अवधारणा। काण्ट के अनुसार व्यक्ति स्वायत्ततापूर्ण ढंग से तभी कार्य कर सकता है, जबकि उसके द्वारा चयनित कार्य के सिद्धान्त के माध्यम स्वतन्त्र तथा समान विवेकीय प्राणी के रूप में उसकी प्रकृति की अभिव्यक्ति संभव हो। रॉल्स के अनुसार यह 'अनभिज्ञता के परदे' के कारण संभव बनाती है। रॉल्स मानता है कि अपनी स्थिति की जानकारी होने पर निश्चित रूप से व्यक्ति का कार्य पराधीनता द्वारा निर्धारित होगा। इसके साथ ही रॉल्स ने न्याय के सिद्धान्तों को काण्ट के अर्थ में निरपेक्ष आदेश भी माना है। निरपेक्ष आदेश से तात्पर्य व्यवहार के नियमों से है, जो ऐसे व्यक्ति पर लागू होते हैं जिनकी प्रकृति स्वतन्त्र तथा समान विवेकीय प्राणी की है।

रॉल्स न अपने न्याय विषयक अवधारणा के अंतर्गत दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

1. प्रत्येक व्यक्ति को सबसे विस्तृत स्वतंत्रता का ऐसा समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए, जो दूसरों की वैसी ही स्वतंत्रता के साथ निभा सकता हो।
2. सामाजिक और आर्थिक विषमतांए इस ढंग से व्यवस्थित की जाएँ कि

(अ) इनसे हीनतम स्थिति वाले लोगों को अधिकतम लाभ हो, और

(ब) ये विषमतांए उन पदों और स्थितियों से जुड़ी हो, जो अवसर की उचित समानता की शर्तो पर सभी के लिए सुलभ हो।[13]

रॉल्स ने 'मूल स्वतंत्रता' की व्याख्या करते हुए कहा है कि स्वतन्त्रताओं से तात्पर्य राजनीतिक स्वतन्त्रता–मतदान करने का अधिकार, सार्वजनिक पद ग्रहण करने की योग्यता के साथ भाषण एवं एकत्र होने की स्वतन्त्रता, आत्म चेतना और चिन्तन की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति रखने की स्वतन्त्रता, किसी को मनमाने तरीके से निरूद्ध न किया जाए, कानून का संरक्षण प्राप्त हो, जैसी स्वतन्त्रताओं के संदर्भ में है, पर रॉल्स का व्यापक विचार है। रॉल्स ने इन सिद्धानतों को विशेष पूर्वताक्रम (Lexical Priority) नियम के अनुसार व्यवस्थित किया है। सिद्धांत (1) को हमेशा सिद्धांत (2) के मुकाबले प्राथमिकता दी जाएगी। इसके अलावा सिद्धान्त (2) के अन्तर्गत नियम (ब) को नियम (अ) पर प्राथमिकता दी जाएगी। इसलिये इस बात का कोई भय नहीं है कि दूसरे लोगों की स्वतंत्रता के लिये किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती नहीं की जाएगी। यह इस बात को भी सुनिश्चित करता है कि समानता के सिद्धांत में किसी भी तरह का हस्तक्षेप या इसका किसी भी तरह का उल्लंघन हीनतम स्थिति के लोगों के लिए सबसे ज्यादा फायदेमंद होगा। दूसरे शब्दों में असमानताओं को इस तरह व्यवस्थित किया जाएगा कि ये सबसे बुरी स्थिति वाले लोगों को सबसे ज्यादा फायदा पहुचाएँ।

रॉल्स सभी स्वतंत्रताओं को व्यक्तियों द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकार किये जाने का समर्थक है। क्योंकि एक स्वतंत्रता का महत्व सामान्यतः दूसरी स्वतंत्रता के सम्मान पर आश्रित है। सामान्यता स्वतंत्रताओं के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए तथा स्वतंत्रता को केवल तभी सीमित करना चाहिए जब दूसरी स्वतंत्रता की मूल्य प्राप्ति को कभी क्षतिपूर्ति की असमान स्वतंत्रताओं की व्यवस्था से भ्रमित नहीं करना चाहिए। दो सिद्धातों को साथ लेते हुए मूल संरचना को इस तरह से व्यवस्थित किया जाये कि सभी सहभागी समान स्वतंत्रता की पूर्ण योजना के साथ न्यूनतम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों को अधिकतम लाभ मिले।[14]

न्याय के दूसरे सिद्धांत 'अवसर की निष्पक्ष समानता का सिद्धान्त' का आशय है कि उनको, जिनकी योग्यता तथा क्षमता का समान स्तर है तथा जो पद प्राप्ति की समान इच्छा रखते है, उन्हें यह जाने बिना कि सामाजिक व्यवस्था में उनका प्रारम्भिक स्थान क्या है, अर्थात यह देखे बिना की वे किस आर्थिक वर्ग में

जन्में है, सफलता के समान अवसर प्राप्त होना चाहिए।[15] स्पष्टतः रॉल्स की दृष्टि में अवसर की समानता एवं योग्यतावादी समाज में अन्तर है। अवसर की निष्पक्ष समानता का तात्पर्य है कि व्यक्ति को देखे बिना कि समाज में उसका क्या स्थान है, वह किस आर्थिक वर्ग का है, पद प्राप्ति के लिए उसको समान अवसर मिलना चाहिए। अवसर की समानता का तात्पर्य व्यक्ति को अपने कम सौभाग्य का प्रभाव तथा सामाजिक स्थिति की खोज में पीछे छोड़ने का अवसर है।[16] योग्यतावादी समाज में केवल बुद्धिमान व्यक्तियों को ही पद प्राप्ति का सुअवसर होता है और उनहीं के हाथ में आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति केन्द्रित होती है।

रॉल्स का आशय सामाजिक जीवन में न्याय के माध्यम से समान एवं समन्वित प्रगति की व्यवस्था करना है। न्याय सदैव अभावों की पूर्ति करने का कारक है। समाज में जो भी लोग भूतकाल में सामाजिक व्यवस्था के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अभाव में रहे है। उनके अभावों की पूर्ति का ''न्याय'' एकमात्र साधन है। अवसर की समानता को रॉलस ने कम सौभाग्य का प्रभाव तथा सामाजिक स्थिति की खोज के पीछे छोड़ने का समान अवसर बताया। उसने प्रक्रियात्मक न्याय के माध्यम से सामाजिक न्याय के लक्ष्य की पूर्ति का प्रयास किया है। सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त करने के लियें न्याय की प्रक्रिया को सुदृढ़ करना आवश्यक है। सामाजिक जीवन परस्पर सहयोग का क्षेत्र है। जिससे अधिक प्रगतिशील लोग कम प्रगतिशील लोगों के साथ मिलकर ही अपनी प्रतिभा एवं अवसरों का लाभ उठा सकते है। सामाजिक न्याय का सार तत्व यह है कि विशेष प्रतिभाशाली लोग विशेष पुरस्कार के अधिकारी तभी माने जायेंगे जब वह अपनी प्रतिभा का प्रयोग हीनतम स्थिति वाले लोगों के लिए करें

प्रक्रियात्मक न्याय का अर्थ है कि जब न्याय के ये सिद्धांत सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिये जाते हैं फिर इनके प्रयोग के परिणामस्वरूप जो भी वितरण प्रणाली अस्त्वि में आएगी, वह आवश्यक रूप से न्यायपूर्ण होगी। रॉल्स ने प्रक्रियायात्मक न्याय के तीन रूपों की पहचान की है–

(अ) पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय के अन्तर्गत वस्तुओं के उपयुक्त वितरण के स्वतंत्र मापदण्ड के साथ–साथ ऐसी प्रक्रिया भी निहित होती है जो उस लक्ष्य की पूर्ति अवश्य करती है।

(ब) अपूर्ण प्रक्रिया न्याय के अन्तर्गत उपयुक्त वितरण का स्वतंत्र मापदण्ड तो रखा जाता है, परन्तु उसे निश्चित रूप से प्राप्त करने की विधि नहीं होती है।

(स) शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय के अन्तर्गत उचित वितरण का स्वतंत्र मापदंड नहीं होता अपितु केवल विधियों और प्रक्रियाओं की व्यवस्था होती है। रॉल्स के न्याय सिद्धांत को शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय कहा जाता है। रॉल्स के न्याय सिद्धांत में केवल वितरण की प्रक्रिया को न्यायसंगत बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें कोई पूर्व निर्धारित परिणाम प्राप्त करने का आग्रह नहीं है।

वितरणात्मक न्याय के लिए अवसर की समानता की उपलब्धता आवश्यक है। सरकार को समान शैक्षणिक अवसर की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए चाहे इसके लिए आर्थिक अंशदान प्रदान किया जाए अथवा अन्य कोई व्यवस्था की जाए। सरकार को न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। सरकार को इसके लिए चाहे पारिवारिक भत्ता, बेरोजगारी भत्ता एवं नकारात्मक आयकर की व्यवस्था करनी हो। रॉल्स प्रतिस्पर्धायुक्त एवं प्रतियोगी बाजार बनाए रखने के पक्ष मे है। ऐसे बाजार तभी बने रह सकते हैं जब उपभोक्ताओं को अपनी आवश्कतानुकूल और पसन्द की वस्तुएं मिल सके। रॉल्स एक तरफ मुक्त एवं सहयोगी बाजार व्यवस्था पर जोर देते है दूसरी तरफ न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की बात करते है। रॉल्स इन दोनों के मध्य सामंजस्य के सन्दर्भ में मानते है कि पहले सब कुछ खुला छोड़ दिया जाये जिसके अंदर जितनी योग्यता है, वह अपनी योग्यता के अनुसर आय अर्जित करेगा। फिर एक व्यवस्था बनाई जाए जिसमें सभी को समान अवसर दिए जाए। अगर कोई फिर भी आगे नहीं बढ़ पाता है तो आय का पुनर्वितरण किया जाए। इसके लिए अमीरों से कर लेकर गरीबों पर खर्च किया जाए। इस तरीके से जो अमीर है वे कर देकर थोड़ा नीचे आ सकते हैं और जो गरीब है वे थोड़ा ऊपर जा सकते हैं। इस प्रकार समाज में जो आर्थिक असमानता है उसे कम किया जा सकता है। आर्थिक रूप से विपन्न व्यक्ति कुछ अच्छी आर्थिक स्थिति में पहुँच सकते है। इस प्रकार न्यूनतम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों को न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति होना सम्भव हो सकता है।

न्याय के सिद्धांत को व्यवहारिक बनाने के लिए रॉल्स ने कुछ परिस्थितियों को आवश्यक माना हैं इन परिस्थितियों में ही स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता सुनिश्चित की जा सकती है। इन्हें रॉल्स ने मूल संरचना कहा है। मूल संरचना का तात्पर्य उस तरीके या पद्धति से है, जिससे एक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख सामाजिक संस्थाएं एक साथ व्यवस्थित होती है तथा व्यक्तियों के मौलिक अधिकार तथा कर्त्तव्य तय किए जाते हैं

तथा लाभों के विभाजन को स्वरूप प्रदान किया जाता है।[17] रॉल्स ने राजनीतिक संविधान, न्यायिक व्यवस्था तथा सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था से जुड़ी हुई संस्थाओं को मूल संरचना कहा है। इसी कारण मूल संरचना को उसने न्याय का प्राथमिक विषय बताया है। मूल संरचना के कारण ही न्यायसंगत दशाएं सुरक्षित रहती हैं, जिससे कि व्यक्तियों और संघो की गतिविधियां न्यापूर्ण तरीके से संचालित होती रहें। जब तक यह संरचना पर्याप्त रूप से नियंत्रित एवं संचालित नहीं होती तब तक सामाजिक प्रक्रिया की न्यायसंगतता में कमी रहेगी।[18] न्यायिक व्यवस्था वैधता पर आश्रित होनी चाहिए तथा चिन्तन की स्वतंत्रता भी अधिकार के रूप में निहित होनी चाहिए। सरकारों का चयन भी शुद्ध राजनीतिक प्रक्रियाओं द्वारा होना चाहिए। इसी से वितरणात्मक न्याय की व्यवस्था हो सकेगी, जिसके द्वारा व्यक्तियों के विकास के लिए आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के लिए विधान होता है। यह सहूलियत अवसर, अधिकार एवं उपलब्धियों के रूप में होती है।

मूल्यांकन

रॉल्स के न्याय सिद्धांत की अनेक समीक्षाकारों ने अपने–अपने तरीके से समीक्षा की है। सी0 बी0 मैक्फर्सन ने अपनी किताब डेमोक्रेटिक थियरीः एसेस इन रिट्रिवल में यह तर्क दिया है कि वास्तव में रॉल्स अपने न्याय के सिद्धांत द्वारा उदारवादी–लोकतांत्रिक पूंजीवादी राज्य का परिष्कृत रूप से पक्ष लेते हैं। मैक्फर्सन मानते हैं कि रॉल्स का न्याय सिद्धांत न्याय का सार्वभौमिक विवरण प्रस्तुत करने के बजाए उदारवादी विश्वासों और मूल्यों को तार्किक आधार देता है। समुदायवादियों को इस विचार पर आपत्ति है कि अपने सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों से पूरी तरी अनजान रहने वाले व्यक्ति अपने विकल्पों का चुनाव कर सकते है। नारीवादी समीक्षक यह तर्क देती है कि दरअसल स्वहित की चिंता करने वाले, स्वायत्त, तार्किक और व्यक्तिवादी व्यक्ति का मॉडल विशिष्ट रूप से पुरूषों की संकल्पना प्रस्तुत करता है। इसमें पालन–पोषण करने, देखभाल करने, सहयोग और हमदर्दी जैसे विशिष्ट रूप से महिलाओं की विशेषता माने जाने वाले मूल्यों और व्यवहारों के लिए बहुत कम स्थान है। इन समीक्षाओं और आलोचनाओं के बावजूद रॉल्स का न्याय सिद्धांत, बीसवीं सदी के राजनीतिक चिंतन में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। जान रॉल्स का सिद्धांत अवसर की समानता, समान स्वतंत्रताओं, प्राथमिक वस्तुओं का न्यायपूर्ण वितरण, आय की समानता, संवैधानिक लोकतन्त्र का समर्थन, समाज के सद्‌गुण के रूप में न्याय की सर्वोच्चता, सामाजिक कल्याण में वृद्धि आदि सन्दर्भों पर विचार करके उदारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। जॉन रॉल्स यह मानता है कि जिस तरह सत्य चिन्तन का प्रथम सद्‌गुण होता है, उसी तरह न्याय सामाजिक–राजनीतिक संस्थाओं का प्रथम सद्‌गुण होता है। राजनीतिक चिन्तन में यह कथन काफी महत्व रखता है। रॉल्स ने अपने न्याय सिद्धांत में स्वतंत्रता व समानता को महत्व देकर स्वतंत्रता व समानता के अधिकारों का संरक्षण किया है। जॉन रॉल्स के न्याय सिद्धांत को अगर भारत के परिप्रेक्ष्य में देखते है, तो हम पाते है कि 1990 के बाद पिछड़े वर्ग को दिया आरक्षण सामाजिक न्याय की प्रक्रिया का ही एक प्रमुख भाग है। रॉल्स की सामाजिक न्याय की अवधारणा भारतीय समाजवादी दर्शन और सर्वोदय के विचार के बहुत समीप है। अतः जॉन रॉल्स का न्याय का सिद्धांत सामाजिक न्याय की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ–

1. E. Barker : Principles of social and political theory, oxford university London 1967 p. 102
2. G.H. Sabine: A History of pol. theory, p.54
3. ओ0पी0 गाबा : राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स नोएडा 1994 पृ0स0 250
4. पाण्डुरंग वामन काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास पृ0स0 700 – 701
5. K.P. Jayaswal: Manu and Yojnavalkaya: A Treaties on the Basic Hind Law. Butterwort & Co. 1930
6. ए0 पी0 अवस्थी : भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0स0 77 – 2001
7. Joel Feinberg: "Rights, Justice and bounds of liberty": Essays in Social Philosophy, Princeton, Princeton University Press, 1980 p.240
8. John Rawls : ' Distributive Justice In Philosophy, Politics and society, Third serils ed. Peter laslett and W.G. Runciman oxford; Basil Blackwell, 1967 p. 59
9. John Rawls: A theory of justice, Cambridge, Massachuselts Belknep Press of Harvard University. 1971 p.11

10. John Rawls : "Distributive Justice" in philosophy, Politics and society, III Series ed. Peter Laslett and W.G. Runeiman (Oxford; Basil Blackwell) 1967 p.59
11. John Rawls : A Theory of Justice, Cambridge, Massachusetts Belknap Press of Harvard University.1971 p .140
12. Ibid p.11
13. Ibid p.191
14. Ibid p.204
15. Ibid p.73
16. Ibid p.106
17. John Rawls, "The Basic structure as subject: American Philosophical quaterly vol.14.no.2.April1977 University of Illinois Press.p.159
18. Ibid p.160